© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 04 , Issue : 01 | January – March 2018

भाषा में पद के महत्त्व पर विद्वानों के विचार

अंकुश, ankboorarajli@gmail.com, हिसार (हरियाणा)

भाषा विचार व्यक्त करने का सर्वोत्तम साधन है। भाषा के बिना जीवन बोझ के समान है। भाषा को सम्पूर्ण रूप तब प्रदान किया जा सकता है जब उसे पद, वाक्य आदि को जोड़ दिया जाता है। विद्वानों में इस बात को लेकर गंभीर रूप से चर्चाएँ होती हैं कि 'वाक्य' ज्यादा महत्त्वपूर्ण है या 'पद'। येस्पर्सन उक्ति की एक ही कोटि स्वीकार करते हैं। 'वाक्य'[1] भर्तृहरि ने भी यही बात स्पष्टता से कही है। उनकी दृष्टि में भी 'वाक्' की एक और अखण्डात्मक अभिव्यक्ति वाक्य से ही संभव होती है। पर हम देखते हैं कि व्याकरण शास्त्र में विचार 'पद' या शब्दरूपों का ही अधिक होता है। अतः स्वभावत्: शंका यह उठती है कि व्याकरण की दृष्टि से इकाई 'पद' है या 'वाक्य' ? भाषा तत्व की दृष्टि से यह ईकाई वाक्य ही ठहरती है। व्याकरण के संबंध में दो विरोधी स्थितियाँ सामने आती हैं। एक ओर, स्फोट–सिद्धान्त के समर्थक और विरोधी इस बात पर बल देते हैं कि व्याकरण वाक्य को अखण्ड इकाई मानता है। उनकी दृष्टि में 'स्फोट' का आधार वाक्य की एकता पर ही निर्भर रहता है। दूसरी ओर, पदवाद के समर्थकों का कहना है कि व्याकरण की समग्र सत्ता 'पदरचना' विषय को लेकर ही बढ़ी है। अतः उनकी दृष्टि में व्याकरण का आधार पद है, वाक्य नहीं।

प्रस्तुत शोध पत्र में हम[1] 'पद' क्या है।[2] पद के विषय में पाणिनी का मत[3] कात्यायन और पतंजलि के विचार[4] पद की स्वतंत्रता पर विचार करेंगे।

(1) **'पद' क्या है' :–** पाणिनी के सुबन्त और तिड्.न्त को पद कहा है।[3] गार्डिनर के शब्दों में शब्द की बाह्य–आकृति को 'पद' कहते हैं। येस्पर्सन की दृष्टि में पद किसी भी प्रयोगार्ह शब्द को कह सकते हैं, चाहे उसमें विभक्ति हो या न हो। अंग्रेजी शब्द 'पार्ट्स ऑफ् स्पीच' 'पद' के भाव का वाहक है। भर्तृहरि की दृष्टि में, पद वह अंश है जो किसी पूर्ण वक्तव्य में से पृथ्क करके, प्रयोगार्ह शब्द के रूप में, विचारार्थ लिया जाता है और जिसमें प्रकृति–प्रत्ययादि का विचार संभव होता है।[5] पतंजति, पाणिनी के चिन्तन पर बढ़ते हुए, 'पद' को केवल विशिष्ट रूप शब्द ही नहीं मानते बल्कि विशिष्ट स्थिति 'पद' के किसी अंश को भी 'पद' कहना ही उपयुक्त मानते हैं।[6] 'पद' शब्द का प्रयोग वैदिक साहित्य में भी मिलता है, परन्तु कदाचित् भिन्न अर्थ में। 'चत्वारि वाक्यरिमिता पदानि'[7] एवं 'चत्वारिश्रृंगा'[8] में दो सत्यों को कहा गया है। पहले मन्त्र 'चारपद' का स्पष्ट अर्थ परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी के रूप में वाणी के चार चरणों से ही है क्योंकि, उन्हीं में से तीन गुहा में स्थित और एक श्रव्य रूप में व्यक्त होते हैं। परन्तु, दूसरे मन्त्र में सात हाथ, तीन पैर आदि की कल्पना के साथ 'चारश्रृंग' वे चार पद ही है जिनकी व्याख्या यास्क, पंतजलि और नागेश ने 'नामाख्यार्तापसर्गनिपाताश्च' के रूप में की है। इसे ही दोहराते हुए भर्तृहरि इतना और जोड़ देते हैं : 'कर्मप्रवचनीयास्तुनिपातेष्वर्न्भूता इति चत्वार्युच्यन्ते'।[9]

(2) **पाणिनी का मत :–** पद के महत्त्व को जानने के लिए हमारी दृष्टि सर्वप्रथम पाणिनी की ओर जाती है। पाणिनी मे तीन सूत्र इस प्रकार हैं :–